# महाव्रतों का युगानुकूल परिवर्तन

—अ. प. मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

आदि तीर्थंकर श्री आदिनाथ के युग में ऋजु और जड़ अधिक थे और अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्धमान महावीर के इस युग में वक्र और जड़ जन अधिक हैं।

**पाँच महाव्रतों का विधान**

व्याख्या प्रज्ञप्ति के विधानानुसार इन दोनों युगों में श्रमणों के लिए पाँच महाव्रतों की परिपालना अनिवार्य मानी गई है।

**पाँच महाव्रत**

प्रथम—अहिंसा महाव्रत
द्वितीय—सत्य महाव्रत
तृतीय—अचौर्य महाव्रत
चतुर्थ—ब्रह्मचर्य महाव्रत
पंचम—अपरिग्रह महाव्रत।

अर्हन्त आदिनाथ के युग में सरलता और जड़ता के कारण और श्रमण महावीर के तीर्थ में वक्रता और जड़ता के कारण पांच महाव्रत पृथक्-पृथक् कहे गए हैं।

जिस युग में सरल और जड़ मानव अधिक होते हैं या जिस युग में वक्र और जड़ मानव अधिक होते हैं उस युग में पाँच महाव्रतों का प्ररूपण किया गया है।

यद्यपि इन दोनों युगों में ऋजु और प्राज्ञ जन भी विद्यमान रहे हैं फिर भी महाव्रतों की आराधना का विधान बहुसंख्यक जनों की अपेक्षा से ही किया जाता है।

अर्हन्त आदिनाथ के शासनकाल में गणधरादि अनेक स्थविर श्रमण ऋजु और प्राज्ञ भी रहे थे किन्तु श्रमण प्रव्रज्या स्वीकार करने वाले श्रमणों में ऋजु और जड़ जन ही अधिक थे।

इसी प्रकार अर्हन्त वर्धमान महावीर के धर्मशासनकाल में अनेक गणधरादि स्थविर ऋजु और प्राज्ञ रहे हैं किन्तु श्रमण संघ में प्रव्रजित होने वालों की अधिक संख्या वक्र और जड़ों की ही थी और है।

निष्कर्ष यह है कि संघ में अधिक संख्या ऋजु जड़ों की होती है या वक्र जड़ों की होती है तो उसी के अनुरूप महाव्रतों की धारणा एवं परिपालना आदि के विधान होते हैं।

अन्तर केवल यह है कि ऋजु-जड़ श्रमणादि जड़ होते हुए भी ऋजुता की विशिष्टता से वे संयम-साधना में सफलता प्राप्त करके शिव पथ के पथिक होकर सिद्ध पद प्राप्त कर लेते थे। किन्तु इस आरक के वक्र जड़ श्रमण वक्रता एवं जड़ता की अशिष्टता के कारण



साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न संयम साधना में सफल होते हैं और न वे शिव पथ के पथिक बनकर मुक्त होते हैं क्योंकि संयम साधना की सफलता में सबसे बड़ी बाधा वक्रता एवं जड़ता की ही है।

**चार यामों (महाव्रतों) का विधान**

अर्हन्त अजितनाथ से लेकर अर्हन्त पार्श्वनाथ तक के सभी संघों में अधिक जनसंख्या ऋजु प्राज्ञ जनों की ही रही थी। वे प्राज्ञ (विशेषज्ञ) होते हुए भी ऋजु=सरल (स्वभावी होते) थे। विशेषज्ञ होकर सरल होना अति कठिन है। यह उस काल की शिष्टता ही थी।

उस मध्यकाल में ऋजु-जड़ जन और वक्र-जड़ जन भी होते थे किन्तु अत्यल्प।

ऋजु-प्राज्ञ श्रमण गणों की संयम-साधना अधिक से अधिक सफल होती थी और वे उसी भव में या कुछ भवों की सतत् संयम-साधना के बाद मुक्त हो जाते थे। अतएव ऋजु-प्राज्ञ श्रमणों के लिए चार यामों (महाव्रतों) की परिपालना का विधान था। उस युग में "याम" शब्द महाव्रतों के लिए प्रचलित था।

**चार याम**

प्रथम याम—अहिंसा महाव्रत

द्वितीय याम—सत्य महाव्रत

तृतीय याम—अस्तेय महाव्रत

चतुर्थ याम—अपरिग्रह महाव्रत

उस मध्य युग में ब्रह्मचर्य महाव्रत, अपरिग्रह महाव्रत के अन्तर्गत समाविष्ट मान लिया गया था—क्योंकि वे प्राज्ञ होने के कारण संक्षिप्त कथन से भी आशय को समझ लेने वाले थे।[1]

**तीन यामों (महाव्रतों) का विधान**

आचारांग में महाश्रमण महावीर प्ररूपित तीन याम का विधान भी है। किन्तु किस काल में तीन यामों का परिपालन प्रचलित रहा यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता।

**तीन याम**

प्रथम याम—अहिंसा महाव्रत

द्वितीय याम—सत्य महाव्रत

तृतीय याम—अपरिग्रह महाव्रत।

अस्तेय महाव्रत और ब्रह्मचर्य महाव्रत ये दोनों अपरिग्रह महाव्रत के अन्तर्गत समाविष्ट कर लिए गए थे।[2]

**इस युग के अनुरूप महाव्रतों का विधान**

यदि इस युग के श्रमण 'जहावाई तहाकारी' याने जैसा कथन वैसा आचरण करना चाहें तो उनके लिए सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य इन तीनों का पालन ही पर्याप्त है।

इस युग के कुछ ऋजु प्राज्ञ श्रमण पाँचों महाव्रतों का परिपूर्ण पालन अवश्य करते हैं। प्रचलित परम्परा के अनुसार ऐसा मान लेना अनुचित भी नहीं है किन्तु नीचे लिखी प्रवृत्तियों का जब तक पूर्ण त्याग न हो तब तक आगमानुसार पाँचों महाव्रतों का या सम्पूर्ण जिनाज्ञा का पालन कैसे सम्भव हो सकता है।

(१) प्रतिबद्ध उपाश्रयों में ठहरना अर्थात् गृहस्थों के घरों की छत से संलग्न उपाश्रयों में ठहरना,

(२) लेखों का, निबन्धों का ग्रन्थों का मुद्रण हेतु संशोधन-सम्पादन करना,

---

१. व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक २० उद्देशक ८

२. आचारांग श्रुतस्कन्ध १, अध्ययन ८, उद्देशक १



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) सजिल्द मुद्रित पुस्तकें रखना एवं उनकी प्रतिदिन उभय काल प्रतिलेखना न करना,

(४) कोई आवे नहीं और कोई देखे नहीं ऐसी स्थण्डिल भूमि के बिना मल-मूत्रादि का परित्याग करना,

(५) बिना किसी अपवाद कारण के दूध आदि विकृतियों का तथा विकृतियुक्त आहारों का सेवन करना इत्यादि संयम को शिथिल करने वाली प्रवृत्तियों का पूर्ण निग्रह करने वाले ही सर्वथा सर्वविरत माने जा सकते हैं।

**व्याख्याप्रज्ञप्ति में**

परिस्थितिवश मूलगुण में, उत्तरगुण में दोष लगाने वाले पुलाक बकुश और प्रतिसेवना कुशील को निर्ग्रन्थ कहा गया है।

उसके निर्ग्रन्थ जीवन की स्थिति यावज्जीवन की कही गई है। उनमें तीन शुभ लेश्यायें कही हैं।

इसी प्रकार संघ हित आदि कारणों से न्यूनाधिक दोष लगाने वाले एवं प्रायश्चित्त ग्रहण करने वाले इस युग के श्रमण-श्रमणियाँ भी आराधक हैं।

—व्याख्या० श० २५, उ० ६

---

(श्रमण संस्कृति : शेषांश पृष्ठ २८३ का)

विषय रहे हैं। अपने व्यापक एवं कल्याणकारी दृष्टिकोण के द्वारा श्रमण संस्कृति ने प्राणिमात्र को आत्म-कल्याणपूर्वक श्रेयोमार्ग पर अग्रसर होने के लिए अपूर्व संदेश दिया है। यही वह मार्ग है जिसका अनुसरण कर प्रत्येक जीवात्मा लोकोत्तर, चरम, यथार्थ, और अक्षय सुख की अनुभूति कर सकता है।

इस रूप से मानवता के लिए सबसे बड़ी देन श्रमण संस्कृति—जैन संस्कृति है जिसे हम मानव संस्कृति भी निःसंकोच भाव से कह सकते हैं, क्योंकि इस संस्कृति का मानवता से सीधा सम्बन्ध है, समस्त मानवीय गुणों के विकास के लिए श्रमण संस्कृति द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त प्राणिमात्र के प्रति समता का अद्भुत आदर्श प्रस्तुत करते हैं। परोपदेश की अपेक्षा स्वयं आचरण के लिए इसमें विशेष जोर दिया गया है, इसके अनुसार प्रत्येक चेतनाधारी जीव को अपनी चेतनता के विकास का पूर्ण अधिकार है। कोई भी प्राणी किसी एक ईश्वर की शरण में न जाकर स्वयं अपने पुरुषार्थ के द्वारा नर से नारायण बन सकता है, उसकी आत्मा में स्वयं अपने विकास एवं चरमोत्कर्ष को प्राप्त करने की अपूर्व क्षमता है। आत्मा की दृष्टि से कोई भी प्राणी किसी अन्य प्राणी की अपेक्षा न तो छोटा है और न बड़ा किन्तु वह अपने राग-द्वेष आदि आदि वैकारिक भावों के कारण विभिन्न योनियों में जन्म लेकर छोटे-बड़े शरीर को प्राप्त करता है तथा अनेकानेक दुःखों को भोगता है, जब इसके राग-द्वेष आदि विकारभाव नष्ट हो जाते हैं उसकी आत्मा निर्मल होकर दिव्यज्ञान के प्रकाश से आलोकित होकर अपने शुद्ध चैतन्यमय स्वरूप को प्राप्त कर इस संसार से सदा के लिए मुक्त हो जाती है।

इस प्रकार यह मानव संस्कृति अपने निर्मल प्रवाह से प्राणिमात्र को कल्याण का मार्ग बतलाते हुए अजस्रूप से भारत की भूमि को पावन करते हुए प्रवाहित हो रही है। □

—भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्
१ ई/६ स्वामी रामतीर्थ नगर
नई दिल्ली-११००५५



साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org